Indian J. Soc &.Pol. 1(2):25-30:2014 **ISSN : 2348-0084**

दलित :एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

राम आनन्द चौबे[1]

[1]प्रवक्ता ,समाजशास्त्र, श्री म0रा0दास स्नातकोत्तर महाविद्यालय भुडकुडा ,गाजीपुर

पूर्वपीठिका

प्रस्तुत शोध–प्रपत्र में सदियों से शोषित –पीड़ित दलित समुदाय के हजारों वर्ष के लम्बे सफर में उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थितियों में क्या–क्या परिवर्तन हुए हैं ? दलित एवं दलित चेतना की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की दिशा कैसी हैं ? इसी को अन्वेषित करना प्रस्तुत प्रपत्र का अभीष्ट है । अस्पृश्य के रुप में दलित वर्ग का उदय सामाजिक संरचना की चरम विकृति का द्योतक है । समाज के इस वर्ग के लोग जिन्हें आज दलित के नाम सें जाता है , 1935 में 'अनुसूचित' बनने से पूर्व इन जातियों को वाह्य जातियॉ , पतित जातियां ,भग्न ,विजातिय ,शूद्र आदि नामों से जाना जाता था । ये जातियॉ कब और कैसे समाज की मुख्य धारा से कट गयीं तथा इन्हें अन्त्यज ,अवर्ण अथवा पंचम के रुप में दासतापूर्वक जीवन जीने के लिए वाध्य होना पडा , इस सन्दर्भ में निश्चितरुप से कुछ कहना कठिन है । फिर भी यह सत्य है कि चमार ,दुसाध ,मुसहर,डोम ,पासी,धोबी ,होम ,भोगता, हलखोर ,महार ,भंगी ,पेरियाह और परल्यम आदि जातियॉ स्वेच्छा से सामाजिक परिधि के बाहर नही गयी होंगी । इन्हें बाहर जाने के लिए विवश किया गया होगा । स्पष्ट है कि इन्हें बाहर करने वाले वे ही लोग होंगे जो शास्त्र ,शस्त्र एवं सम्पत्ति से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में सृदृढ होंगे और इसी सुदृढता के बल पर इन जातियों को नीचे जाने के लिए मजबूर किये होंगे ।

दासता बुरी है किन्तु अस्पृश्यता तो दासता से भी बुरी है ,क्योकि इसमें जन्म पर आधारित आनुष्ठानिक पवित्रता – अपवित्रता, उच्च और निम्न की भावना निहित होती है । जिन लोगो ने अस्पृश्यता रुपी बेड़ी (हथकड़ी) का निर्माण किया होगा वे निःसन्देह जानते होंगे कि जिनके हाथ–पैर में यह बेड़ी एकबार डाल दी जायेगी वे तथा उनकी आने वाली सन्तानें कभी भी न तो समानता की बात करेंगी और न ही सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दे सकेंगी। पवित्रता –अपवित्रता का मूल्य भारतीय सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलु में समाहित है। यहॉ केवल व्यक्ति और जातियॉ ही पवित्र और अपवित्र या कम पवित्र और अधिक पवित्र नहीं हैं बल्कि यहॉ की प्रत्येक वस्तु में पवित्रता–अपवित्रता घुली हुई है। दुध पवित्र है पानी अपवित्र,सोना पवित्र है लोहा अपवित्र। इसी प्रकार रेशम पवित्र है और रूई कम पवित्र तथा विस्तर विल्कुल अपवित्र। इस प्रकार की धारणाऍ भारतीय सामाजिक व्यवस्था में विद्यमान है।

दलित का अवधारणात्मक विश्लेषण

दलित शब्द आधुनिक है लेकिन दलितपन प्राचीन है। व्युत्पत्ति के आाधार पर 'दलित' शब्द की उत्पति संस्कृत साहित्य के दल धातु से हुई है।जिसका शाब्दिक अर्थ तोड़ना ,कुचलना है–भते भंकुभ दलेन भूवि सन्ति शूराः (भतृहरि –1. 59) संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुम के अनुसार दलित का अर्थ है – टूटा हुआ , कटा हुआ , पिसा हुआ (संस्कृतकौस्तुम , स0 चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा, पृ0 524) मानक अंग्रेजी– हिन्दी कोश में दलित शब्द के लिए 'डिप्रेस्ड' शब्द दिया गया है जिसका अर्थ है – दबाना, झुकाना,म्लान करना तथा दलित वर्ग का अर्थ – नीची जातियों के अछूत ,हरिजन,पीड़ित ,पद्दलित आदि है (मानक अंग्रेजी– हिन्दी कोश,सत्यप्रकाश पृ. 362)। इसी प्रकार हिन्दी शब्दकोशों में भी दलित शब्द का अर्थ मसला हुआ ,मर्दित ,दबाया हुआ ,रौदा हुआ , विनष्ट किया हुआ (संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर ,स0 रामचन्द्र पृ0 648)। जिसका दलन हुआ हो , जिसे पनपने न दिया गया हो (मानक हिन्दी कोश ,स0 रामचन्द्रवर्मा पृ035) । मसला हुआ ,कुचला हुआ ,खण्डित ,जो दबाकर रखा गया हो (हिन्दी शब्द सागर ,चतुर्थ भाग , श्याम सुन्दर दास पृ0 229) । लेलाह दुश्किन के अनुसार 'वे हिन्दू जातियॉ जिनके सम्पर्क में आने पर उच्च जाति के हिन्दुओं को शुद्धीकरण करना पड़े (Lelah Dushkin,1998,पृ 171) इलियनर जिलियट के शब्दो में ''जिसे तोड़ दिया गया है और जिसे उसके सामाजिक दर्जे से उपर बैठे लोगों ने जान – बुझ कर नियोजित रुप से कुचल डाला है। इस शब्द में छुआछूत, कर्म सिद्धात और जातिगत श्रेणी क्रम का नकार निहित है'' (इलियनर जिलियट ,1978, पृ0 77)।

इस प्रकार 1936 में अनुसूची लागू होने के पूर्व दलित शब्द को धार्मिक आधार पर अशुद्ध एवं अस्पृश्य के रुप में देखा जाता था । किन्तु आज दलित वर्ग के अन्तर्गत केवल अस्पृश्य वर्ग ही नहीं अपितु सामाजिक रुप से अविकसित, पीड़ित, शोषित निम्न जातियों के वर्गों की गणना होती है।

अतीत में दलित

1:Corresponding Author

प्राचीन धर्म ग्रन्थों में दलितों के लिए शूद्र ,चाण्डाल ,अंत्यज और अस्पृश्य आदि शब्द प्रयुक्त किये गये हैं। यही दलित शब्द के पुरखे हैं। ईश्वर ने किसी को दलित बनाया हो यह सत्य नहीं है। न ही यह सनातन है। वैदिक काल इस बात का प्रमाण है कि शूद्र अपवित्र नहीं होते । शतपथ ब्राह्मण में सम्पन्न शूद्रों का वर्णन है (शतपथ ब्राह्मण, 5,4,9,12)। शूद्र राज्य मंत्री के रुप में शुसोभित थे (काठक संहिता, 38,5, तैत्तिरीय संहिता 4,8 3,)। तैत्तिरीय संहिता में शूद्र राजाओं का भी जिक्र मिलता है, (5,7,6,4)। शूद्रो की उन्नति के लिए प्रार्थना की गई है (तैत्तिरीयसंहिता 5,7,6,4)। अर्थववेद से ज्ञात होता है कि लोग आर्य और शूद्र दोनों के प्रिय होना चाहते थे (अर्थववेद 19,345, 141)। यजुर्वेद संहिता में शूद्र और आर्यो के बीच अवैध यौनाचार का उल्लेख है (बी0 एन0 दत्त, 29)। वैदिक काल में वैश्य युद्ध में भाग लेते थे और शूद्र शासन चलाते थे (नर्वदेश्वर प्रसाद, 1965, 48) । उत्तरवैदिक काल में ब्राह्मण ,क्षत्रिय ,वैश्य अपने वर्गोचित कर्तब्य से विचलित होने पर शूद्र हो जाते थे (पी0 बी0 काणे, 8)।

द्विज और शूद्रों के बीच विवाह सम्पन्न होते थे (वाजसनेयी संहिता 23, 32,)। रामायण में ऐसे ब्राह्मण की चर्चा की गयी है जो हल ,कुदाल लेकर खेतों में काम करता था (रामायण, अयोध्याकाण्ड, 33) । महाभारत में कहा गया है कि जिन लोगों में सत्य दान,क्षमा , तप, दया और ज्ञान हो वे ही ब्राह्मण हैं अन्यथा शूद्र हैं (वन पर्व 21, 26, 108) शुभ आचरणों से शूद्र ब्राह्मण और वैश्य क्षत्रिय हो सकता है(ब्रह्म पुराण, 223.62,37. 40)। ब्राह्मण नीच वृत्ति अपनाने पर शूद्र हो जाता है (महाभारत ,अनुशासन पर्व 144)।यद्यपि यह सत्य है कि महाकाव्य काल तक अस्पृश्यता नही थी किन्तु इसे भी अस्वीकार नही किया जा सकता कि वर्ग–विभेद का कमोवेश विजारोपण महाकाव्य काल में ही हुआ जो उत्तरोर बढ़ता ही गया। तदुपरांत गौतम, वौधायन , आपस्तम्ब और इसी प्रकार याज्ञवल्क्य, नारद , वृहस्पति ,मनु आदि शास्त्रकारों और स्मृतिकारों द्वारा जितनें भी धर्मशास्त्र प्रणीत हुए उन सब में शूद्रों के प्रति कठोरता बढ़ती गयी ।अस्पृश्यता का आरम्भ हुआ और शूद्रों की स्थिति दयनीय हो गयी।

शूद्र कौन थे ?

यूरोपीय अध्येयता ऐसा मानते है कि शूद्र भारत के मूल निवासी थे। वे काले रंग के थे। गौर वर्ण वाले आर्यों ने उन्हें गुलाम बना लिया था। अब प्रश्न उठता है कि यदि गौर वर्ण वाले ब्राह्मण और कृष्ण वर्ण वाले शूद्र थे तब रक्त वर्ण वाले क्षत्रिय और पित वर्ण वाले वैश्य कहॉ गये ? अतः हम भृगु ऋषि के इस बात से सहमत हैं कि आरम्भ में सभी लोग ब्राह्मण थे। आगे चलकर अपने कर्मों के अनुसार कई जातियों मे बंट गये जिन ब्राह्मणों को भोग विलास प्रिय था , जिनकी प्रकृति हिंसालु और ओजस्वी थी और शरीर रक्त वर्ण का था, वे सब क्षत्रिय कहलाये । जो ब्राह्मण पशु पालते थे, कृषि करते थे, जिनका रंग पीला था, वे वैश्य हो गये। इसी प्रकार जो ब्राहाण झूठ बोलते थे, दुष्टता में रत थे, काले रंग के थे, वे शूद्र हो गये (बी0 एन0 दत्त, 11)। सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त में भी कहा गया है कि सभी जातियां ब्रह्म से प्रार्दुभूत हुई हैं। कौटिल्य ने स्पष्ट रुप से शूद्रों को आर्य माना है। शूद्रों के सबसे बड़े शत्रु मनु ने भी नहीं कहा है कि शूद्र आर्य नहीं थे। अत्रिसंहिता में शूद्र, चाण्डाल और मलेच्छ सभी को ब्राह्मण मना गया है (अत्रि संहिता 167)। अतः शूद्र अनार्य नही आर्य थे।

अतीत में दलितों की स्थिति

गौतम धर्मसूत्र के अनुसार शूद्र को जूठे भोजन, पुराने वस्त्र तथा पुराने जूते पहनकर जीवन व्यतीत करना चाहिए (गौतम धर्मसूत्र 10.57– 59)। पुनःश्च राजा को चाहिए की शूद्र की उस अंग को कटवा दे जिससे उसने किसी ब्राह्मण का अहित किया है (गौतम धर्मसूत्र खण्ड 12 पृ01) आपस्तम्ब के अनुसार यदि भोजन करते समय कोई शूद्र छु लेता है तो द्विज को भोजन छोड़ देना चाहिए। शूद्र किसी द्विज को गाली देता है तब उसकी जीभ काट देना चाहिए । यदि शूद्र किसी द्विज की बरावरी करता है तब उसे कोड़े से पीटा जाना चाहिए (आपस्तम्ब धर्मसूत्र खण्ड 2 पृ0 10, 15, 26, 27)। मनु लिखते है कि जब शूद्र किसी को अपशब्द कहता है तब जीभ और जब किसी द्विज पर अघात करता है तब उसका वह अंग काट लेना चाहिए ।

यदि वह द्विज के नाम और जाति का घृणापूर्वक उच्चारण करता है तब उसके मुख में दस अंगुल का लम्बी लोहे की कील घुसेड़ दी जाय तथा यदि वह ब्राह्मण को कर्तव्य सिखाने की घृष्टता करता है तब उसके मुख और कान में गर्म तेल डालनी चाहिए (मनु स्मृति 8.416,8.417) किन्तु मनु पंचम वर्ण के अस्तित्व को नकारता है । वह बार–बार कहता है कि नास्ति तु पंचमः (मनुस्मृति 9.4)। पंचम वर्ण का अस्तित्व साब पुराण में मिलता है। (साब पुराण 66. 10)। एन के0 दत्त भी पंचम जाति, पंचम वर्ण, वर्ण विहीन वर्ण का उल्लेख करते हैं। (दत्त 1968, 59, 89, 215) के0 आर0 हनुमंत के अनुसार एक बार चातुर्वर्ण्य स्थापित हो जाने के बाद उसके द्वार अस्पृश्यों के लिए स्थायी रुप से बन्द हो गये और वे पंचम वर्ण के रुप में स्थापित हो गये। (हनुमंत 1979. 119– 120)। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि अतीत में दलितो की स्थिति बदत्तर थी। उन पर अनेक प्रकार के कठोर

प्रतिबन्ध लगाये गये थे उन्हे उच्च जाति के हिन्दुओं से दूरी बनाकर रहना पड़ता था।

दलितों की वर्तमान प्रस्थिति

स्वातंत्रोपरान्त स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के पश्चात् दलितों की दशा में कितना सुधार हुआ है ? क्या दलितों की अभी भी उपेक्षा हो रही है? क्या उन्हें अभी भी सताया जा रहा है ? इस सदर्भ में प्राप्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि आज प्रति 6 भारतीयों में एक व्यक्ति (अनुसूचित जाति का) दलित है। इनकी सबसे अधिक संख्या उत्तर प्रदेश में 21 प्रतिशत है। इसके बाद पश्चिम बंगाल में 12 प्रतिशत, बिहार में 9 प्रतिशत, तमिलनाडु में 8 प्रतिशत , आन्ध्र प्रदेश में 8 प्रतिशत, मध्य प्रदेश में 7 प्रतिशत, महाराष्ट में 6 प्रतिशत और राजस्थान में 5 प्रतिशत है ;डंद चवूमत चतवपिसमए प्दकपंए छमू क्मसीप 1998रू 35द्ध। इस प्रकार लगभग 85 प्रतिशत अनुसूचित जातियां गॉवों में रहती हैं। आर्थिक दृष्टि से ये प्रभु जातियों और भूस्वामियों पर निर्भर हैं। ग्रामीण समाज में दलितों की दो प्रमुख विशेषताए हैं पहला यह कि दलितों के पास भूस्वामित्व नही है और दूसरा कृषि कार्यों में मजदूरी करके जीवकोपार्जन करती हैं । आज का दलित गांव में भोजन,वस्त्र और आवास आदि जीवनोंपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति में अक्षम है। यह आज भी सामाजिक ,सास्कृतिक और धार्मिक विधि–विधानों की चक्की में पिस रहा है, उसका शोषण जारी है। यद्यपि शोषण का स्वरुप बदल गया है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि आजादी से पहले जो दलितों की समस्याएं थीं वे आज नहीं हैं। अब दलित जातियां मंदिर में प्रवेश कर सकती हैं। सार्वजनिक स्थलों का लाभ उठा सकती हैं। अछूत भी उन्ही स्कूलों में पढने जाते हैं, जहां सवर्णों के बच्चे जाते हैं । उसी रेलगाड़ी ,मोटरगाड़ी में यात्रा करते हैं , उसी नदी घाटों और सुलभ शौचालयों का प्रयोग करते हैं जिसका प्रयोग उच्च जातियां करती हैं। स्पष्ट है कि अपवित्रता का महत्व घट गया है। दिन– प्रतिदिन के जीवन में सवर्ण और अछूत जातियों द्वारा अस्पृश्यता को कोई महत्व नहीं दिया जाता है। अतः जाति एक लोचदार और परिवर्तनशील संस्था बन गयी है। इसी के अनुरुप छुआछूत की धारणा में भी परिवर्तन हुआ है। वृहद सामाजिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में दलितों की प्रस्थिति में भी परिवर्तन हुआ है।

अब वह अपने संवैधानिक अधिकारो को समझने लगें हैं । जब कभी किसी हरिजन को मंदिर जाने से रोका जाता है , हैण्डपम्प से पानी लेने से मना किया जाता है या अस्पृश्य होने के कारण होटल में चाय –नास्ता करने से मना किया जाता है तब संघर्ष पर उतारु हो जाते हैं या पुलिस स्टेशन पहुचं जाते हैं। वास्तव में दलितों की यह मानसिक परिवर्तन बहुत बड़ी उपलब्धि है। किन्तु जैसे– जैसे दलित अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर उनकी दावेदारी करने लगें हैं । वैसे –वैसे उनके उपर होने वाली ज्यादतियों में कूरता और आतंक की मात्रा भी बढ़ती जा रही है।

शिक्षा के विकास के साथ– साथ दलितों में एक नयी सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना जाग्रत हुई है। चुनाव आयोग द्वार उठाये गये कठोर कदमों से राजनीतिक मताधिकार के प्रयोग की सुखद अनुभूति हुई है । भले ही पहले ये राजनीतिक सहभागिता हेतु जागरुक नही थे , किन्तु वर्तमान में राजनीतिक आकांक्षाएं बढ़ी हैं। आधुनिकीकरण ,पश्चिमीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव इनके उपर भी पड़ा है । इस नये अनुभव ने दलितों को अपने रहन–सहन में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित किया है। सवर्णों की जीवन–पद्धति और कार्यप्रणाली इनके अभिन्न अंग बनती जा रही है । परम्परागत कार्यों के प्रति दूरी बढ़ती जा रही है। अतः तीव्र गति से दलितों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया परिलक्षित होती है ।

वर्तमान समय में सामाजिक गतिशीलता का अधिक प्रभावकारी साधन अधिकाधिक राजनीतिक सहभागीकरण हो गया है(श्रीनिवासन, 1968:195) । प्रजातंत्रीकरण और वयस्क मताधिकार के फलस्वरुप राजनीतिक सत्ता को प्राप्त करना दलितों के लिए अब अधिक सरल हो गया है । राननीतिक शक्ति का संचय जहां व्यक्ति और समूह के आर्थिक व शैक्षणिक हितों की वृद्धि में सहायक है वहीं उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि का परिचायक भी है (श्रीनिवासन, 1968:195) इसलिए दलितों ने स्पष्ट रुप से यह अनुभव कर लिया है कि उच्च जातीय प्रतीकों व मूल्यों को अपनाना तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना आवश्यक सत्ता प्राप्ति के पश्चात ही सम्भव होगा । दलित समूह यह समझने लगा है कि उनकी समस्या केवल प्रभावी राजनीतिक कार्यवाही से ही हल हो सकती है । हाल ही में संसद,विधानसभाओं, विभिन्न सेवाओं ,शैक्षणिक संस्थाओं में पदों के आरक्षण तथा सरकार द्वारा प्रदत्त अन्य विशेषाधिकारों के कारण, निम्न संस्कारिक प्रस्थिति के व्यक्ति के पास उच्च आर्थिक व राजनीतिक प्रस्थिति प्राप्त करने के आसार बढे हैं (आहूजाः 2004:78) । अब दलितों के राजनीतिक ,आर्थिक ,स्थिति तथा उनकी सामाजिक प्रस्थिति के बीच एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध दृष्टिगोचर होता है। आज दलितों के उच्च अधिकारी ,सांसद ,विधायक या अभिजात वर्ग सवर्णो के जाने पर कुर्सी छोड़कर नही उठते। दलितों के इस अभिजात वर्ग को सवर्ण पहले हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं ,दलित अभिजात बाद में ।

आधुनिक मूल्यों के आन्तरीकरण तथा नवाचारों की स्वीकृति के कारण अनुसूचित जातियों के एक विशेष वर्ग को संवैधानिक प्रावधानों का सर्वाधिक लाभ प्राप्त हुआ है । यह वर्ग अनुसूचित जातियों के अभिजात के रुप में उभरा है (सच्चिदानन्द, 1977) । इस वर्ग के लोगों के प्रति उच्च जातियों में ईर्ष्या उत्पन्न हुई है । किन्तु कथ्य है कि दलितों का यह अभिजात अपनी ही जातियों के साथ पहचाने जाने से कतराता है। वह अपना सम्बन्ध उच्च जातियों से जोड़ता है।

उन्ही के साहचर्य मे रहना पसन्द करता है। यद्यपि सरकारी कार्यक्रमों और नीतियों के कारण तथा अस्पृश्यों की स्वयं की प्रयत्नों से दलितों की दशा में सुधार हुआ है , दलितों और गैर दलितों के बीच संरचनात्मक दूरी कम हुई है , शिक्षा और नौकरियों में इनका प्रतिशत बढ़ा है तथापि ग्रामीण भारत में दलितों की सामाजिक – आर्थिक प्रस्थिति में संतोषजनक परिवर्तन परिलक्षित नही होता है । एक बड़ी संख्या में दलित आज भी गांवों में जन्मजात हीनता की ग्रन्थि से पीड़ित हैं । अब इनकी मांग पवित्रता – अपवित्रता नही प्रत्युत सामाजिक सम्मान और मनुष्यों जैसा व्यवहार है। वे चाहते है कि उन्हें उचित मजदूरी दी जाए , उन्हें अपनी सम्पत्ति से बेदखल न किया जाए , उनके बच्चों को शिक्षित किया जाए, उन्हें अन्य समुदायों के बराबर रखा जाए । मानव होने के नाते उनके साथ मानव जैसा व्यवहार किया जाए ।

दलितों पर अत्याचार

अतीत में दलितों को जो प्रस्थिति प्रदान की गई है उसे इतनी आसानी से संवैधानिक प्रावधानों द्वारा समाप्त नही किया जा सकता । दलित अशुद्ध जन्मते हैं और अशुद्ध ही जीवन भी जीते हैं। कलंक जो जाति के अनुसार जन्मजात होता है, जीवन पर्यन्त चलता रहता है और किसी संस्कार द्वारा समाप्त नही होता । दलितों पर अत्याचार का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । इसमें ऐसे सभी प्रकार के दबाव शामिल किये जा सकते हैं जो दलितो को सामान्य अधिकारों के उपयोग से वंचित करते हैं। अनेक निषेध व निर्योग्यताएँ शास्त्रीय नियमों अथवा सामाजिक प्रथाओं व परम्पराओं द्वारा दलितों पर थोपी गई थी(काम्बलें, 1982,12–18) । जिसे नियति या मजबूरी समझकर दलितों ने भूतकाल में चाहे, अनचाहे स्वीकार किया था। किन्तु वर्तमान सन्दर्भ में स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय पर आधारित समाज व्यवस्था की स्थापना के उपरांत दलितों को मत देने से रोकना, विपक्षी को मत देने पर प्रताड़ित करना, बात– बात में अपशब्दों का प्रयोग करना ,शासन द्वारा अवांटित भूमि पर कब्जा न देना तथा मारना– पीटना ,हत्या, बलात्कार और आगजनी जैसे अनेक कार्य हैं जो एक गम्भीर व्याधि का रुप धारण कर लिया है।

आज प्रति दों घटें में एक दलित की पिटाई होती है, प्रतिदिन तीन दलित महिलाएं बलात्कार की शिकर होती हैं, प्रतिदिन दो दलितों की हत्या की जाती है और दो घर जला दिए जाते हैं (Crime in India 1998: 184)। बिहार में जुलाई 1996 और जून 2000 के मध्य आठ बार दलितों पर कहर ढाया गया । दिसम्बर 1997 में 61 दलितों का नरसंहार हुआ, मार्च 1999 में 34 तथा जून 2000 में 35 दलितों की हत्या की गई (The Hindustan times, Jun 13, 2000)।

अधिकतर अनुसूचित जातियॉ खेतिहर मजदूर हैं। वे हमलें , हत्या , बलात्कार और अमानवीय व्यवहार के शिकार होते हैं। इन अमानवीय व्यवहारों के प्रति तनिक भी प्रतिक्रिया करने पर इन्हें सार्वजनिक सुविधाओं और खेतों में मजदूरी करने के वंचन का सामना करना पड़ता है। इस तरह कि घटनाएं बिहार , उ0प्र0 , गुजरात, महाराष्ट्र,म0प्र0,आन्ध्र प्रदेश तमिलनाडु और राजस्थान आदि प्रदेशों में होती रहती हैं (शर्मा, 2006: 165)।

दलित चेतना

चेतना वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति व समूह की मनः स्थिति के मात्रात्मक एवं गुणात्मक अभिव्यक्ति का बोध होता है। यह जनजागरुकता की परिपूरक है। समूहों के गठन एवं आकांक्षाओं के निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। अपने समस्त अधिकारों के प्रति जागरुक बनाती है।

प्रश्न है कि आज दलितों में चेतना क्यों उत्पन्न हुई है? इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि दलितों का सवर्णों द्वारा यदि लगातार शोषण नहीं किया गया होता तो सम्भवतः अभी तक दलित जातियां राजनीतिक सत्ता की बजाय नौकरी और पदों की मांग कर रही होतीं और दलित चेतना इतनी शक्ति और विश्वास के साथ नही उभरती। दूसरी बात यह भी है कि भारत के संविधान में दलितों की उत्थान के लिए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में विशेष प्रावधान दिए गयें हैं । इन प्रावधानों का भी ठोस प्रभाव पडा है और इससे अनुसूचित जातियों में एक स्तर तक चेतना उत्पन्न हुई है । दलित जाति मुकाबले की शक्ति के रुप में उभर रही है क्योंकि दलित जातियां धर्मनिरपेक्ष मूल्यों , समतावाद और समानता की खोज का प्रतिनिधित्व करने वाली शक्ति की प्रतिनिधि हैं (शर्मा 2006:160) आज दलित अपनी संख्याबल को आधार बनाकर राजनीतिक भविष्य बनाने की कोशिशें शुरु कर दी है । वर्षों से हासिये पर पड़े दलितों में उत्पन्न निराशा उन्हें नये– नयें रास्ते खोजने पर विवश कर रही है । अब ये जाति , उपजाति के आधार पर

संगठित होकर येन–केन–प्रकारेण राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने में लगे हैं। 'जाति का तेजी से राजनीतिकरण हो रहा है (कोठारी , 1970) साथ ही जातिगत अस्मिताओं के आधार पर की जाने वाली मांगें और दावों की प्राथमिकता भी बदल रही है। पहले दलितों की इन मांगो में आर्थिक प्रगति की आकांक्षाएं ही मुख्य होती थी , फिर इनमें सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न भी जुड़ गया और अब वे राजनीतिक सत्ता को अपना केन्द्र बना ली हैं । दलित आकांक्षाएं और रणनीति मुख्यतौर पर शिक्षा, रोजगार और विशेषाधिकारों के सन्दर्भ में उॅची जातियों के वर्चस्व को चुनौती देती हुई प्रतीत होती है अर्थात दलितों की प्राथमिकता व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करते हुए उसे अंदर से चुनौती देना है। अतः दलित चेतना का दलितों के सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इससे दलित विरोधियों में बेचैनी बढ़ी है। दलित विरोधी ईर्ष्या से जल रहें हैं । उनकी सत्ता खिसकती हुई नजर आ रही है।

विगत दशक पूर्व दलित मतदाता वोट डालने में द्विज मतदाताओं से काफी पीछे रहते थे या तो उॅची जातियां उन्हें मत देने से जबरन रोक देती थीं या वे स्वतः राजनीतिक चेतना की कमी के कारण या हिंसात्मक प्रतिक्रिया के डर से मतदान केन्द्रों पर नहीं जाते थे । किन्तु आज स्थिति विपरीत है । आज इस प्रक्रिया में द्विज पीछे हो गये हैं और दलित अग्रणी बन गये हैं। अपने अधिकारों के प्रति बढ़ती हुई चेतना के कारण दलितों के लिए मतदान अब एक निष्क्रिय कार्यवाही नही प्रत्युत सामाजिक उर्ध्वगामिता का प्रतीक बन गया है ।

स्पष्ट है कि दलित अब अपने मत का महत्व समझ गये हैं और सामूहिक ताकत के बल पर चुनावी सौदेबाजी की स्थिति में आ गये हैं । दलितों के लिए राजनीतिक दलों का महत्व कम बल्कि राजनीतिक पहचान की महत्व अधिक है । शायद इसीलिए दलित जातियॉ मतदान केन्द्रों पर लम्बी–लम्बी कतारें लगाये हुए देखी जाती हैं ।

दलितों का भविष्य

क्या दलित समाज के मुख्य धारा में समाहित हो सकेंगे ? क्या आने वाले दिनों में दलितों की सत्ता कायम होगी ? इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि विषमता और शोषण के अंत की सम्भावनाएं अभी दूर–दूर तक दिखायी नही देरही है किन्तु ऐसे कई संकेत मिल रहें हैं जिससे लगता है कि यह प्रक्रिया शुरु हो गयी है । इसे नये आवेग और नयी बौद्धिक व्यक्तित्व की आवश्यकता है । युगों की दासता की बेड़ियों को समाप्त किया जा सकता है यदि दलित शिक्षित हो जांय और अपनी लड़ाई स्वंय लड़े । (सच्चिदानन्द,1977:172) भी कहते हैं कि सरकार के सुधारात्मक प्रयत्नों , दलितों की बढ़ती हुई चेतना और हिन्दुओं के उदार दृष्टिकोण जैसे कारकों के सामंजस्य से समय के साथ–साथ दलितों की निर्योग्यताएं एवं भेदभाव समाप्त हो जायेंगे । यह प्रश्न और भी जटिल है कि दलित समाज आने वाले दिनों में किस दिशा में जाएगा ? यह मुख्य रुप से इस तथ्य पर निर्भर करता है कि दलित चेतना सवर्णों की प्रतिक्रिया के रुप में उभर रही है या लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर । यदि सवर्णो की प्रतिक्रिया के रुप में उभर रही है तब तो एक सीमा के पश्चात इसका क्षय निश्चित है । क्योकि यह चेतना अधिक दिनों तक टिकाउ नही हो सकती । दूसरी तरफ यदि लोकतांत्रिक प्रक्रिया के रुप में अबाध गति से चलती है तब तो दलित समाज में और अधिक जागरुकता आएगी और आने वाले दिनों में दलित अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । इस सन्दर्भ में यह कथनीय है कि दलित अभी तक राजनीतिक दल के रुप में संगठित नही हुआ है ।अभी तक न तो वे एक सामान्य मंच बना सके हैं और नही वे एक झंडे के नीचे आ रहे हैं । विभिन्न राज्यों में विभिन्न पार्टियों के साथ जुड़े हुए हैं । फिलहाल वे एक राजनीतिक दल के रुप में संगठित न होकर अपने समर्थन का मूल्य वसूलने में लगे हैं ।

दलितों के राजनीतिक भविष्य की दूसरी समस्या अखिल भारतीय स्तर पर नेतृत्व की कमी है । दलितों का नेतृत्व बिखरा हुआ है । यह विभिन्न मार्गों पर चल रहा है । दलित नेता अपने राजनीतिक हित साधने में लगे हैं । उन्हें दलितों के हित की कम राजनीतिक पद की अधिक आकांक्षा रहती है । फिर भी उनके द्वारा जो मुद्दे उठाये जाते हैं उसका प्रभाव सम्पूर्ण दलित समुदाय पर पड़ता है । इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि शासक दलों द्वारा अपने राजनीतिक महत्वाकांक्षा के कारण दलितों के नेतृत्व को या तो विभाजित करा दिया जाता है या उन्हे पद या पैसा का लालच देकर खरीद लिया जाता है।इसका दलित समाज के भविष्य पर बूरा प्रभाव पड़ रहा है।

दलितों तथा पिछड़ी जातियों के बीच बढ़ता हुआ मतभेद भी इनके राजनीतिक भविष्य के लिए संकट का द्योतक है । यदि ये दोनों मिल जाते हैं तब राजसत्ता को प्राप्त करना सरल हो जाएगा । क्योकि आज जो हवा चल रही है वह मार्क्स ,गांधी और माओ के नाम से नहीं प्रत्युत अम्बेडकर के नाम से गूंज रही है । अतः इन दोनों का मिलना आवश्यक हो गया है । किन्तु सत्य तो यह भी है कि पिछड़ों में एक ऐसे साधन –सम्पन्न वर्ग का निर्माण हुआ है जो दलितों के शोषक के रुप में उभर रहा है । ऐसे में खतरा यह है कि दलित सवर्णों के चंगुल से छुटकारा पाकर कहीं सम्पन्न पिछड़ी जातियों के चंगुल में न फंस जॉय।

अतः दलित आन्दोलन को एक सच्चे मुक्ति आन्दोलन के रुप में उभरना होगा । इसके लिए उन्हें एक कुशल नेतृत्व और संगठन का निर्माण करना होगा अपने संघर्ष को व्यापक आधार देने के लिए नक्सलवाद और अलगाववाद से पीछे हटना होगा । साथ ही साथ भय और असुरक्षा की मनोवृत्ति को त्यागना होगा । उम्मीद है कि दलित आन्दोलन के सतत संघर्ष के गर्भ से एक दिन निश्चय ही उज्जवल भविष्य प्रकट होगा और दलित राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करनें में सफल होगें तथा समाज के मुख्यधारा में समाहित होंगे ।

संदर्भ

आइजक,आर0 , *इण्डियाज एक्स अनटचेबुल्स,* एशिया पब्लिशिंग हाउस,बाम्बे ,1965.

आहुजा,राम : *इंडियन सोसाइटी* (हिन्दी संस्करण) रावत पब्लिकेशन्स,जयपुर,2004

काम्बले ,एन0डी0: *द शिड्यूल्ड कास्ट्स,* आशीष पब्लिशिंग हाउस ,नई दिल्ली,1982.

कोठारी,रजनी : *कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स,* ओरियेंट लौंगमैन, नई दिल्ली ,1970.

गुप्ता,दिपांकरः *सोशल स्ट्रटीफिकेशन,* आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ,दिल्ली ,1991 .

जिलियट ,इलियनर : दलित न्यू कलचरल कंटेक्स्ट फार ऐन ओल्ड मराठी वर्ल्ड,कन्ट्रीव्युशन टु *एशियन स्टडीज* 1978 .

द हिन्दुस्तान टाइम्स ,जून 13, 2000

दत्त,एन0 के0 : *ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ कास्ट इन इंडिया* , कलकत्ता 1968.

देशाई ,आई0पी0 : *अनटचेविलिटी इन रुरल गुजरात* ,पापुलर प्रकाशन ,बाम्बे 1976.

प्रसाद, नर्वदेश्वर : *कास्ट सिस्टम* (हिन्दी संस्करण) राजकमल प्रकाशन,दिल्ली ,1965.

माइकल,जे0 महार : *दि अनटचेबल्स इन कंटेम्पोरेरी इंडिया* ,रावत पब्लिकेशन,जयपुर 1998.

मैन पावर प्रोफाइल, इण्डिया, नई दिल्ली, 1998

शर्मा के0एल0 : *इण्डियन सोशल स्ट्रक्चर एण्ड चेंज* (हिन्दी संस्करण) ,रावत पब्लिकेशन,जयपुर 2006.

शाह ,घनश्यामः *सोशल मुवमेंट इन इण्डिया* ,सेज पब्लिकेशन नई दिल्ली,1990.

श्रीनिवास,एम0 एन0 : *कास्ट इन मॉडर्न इडिया,* एशिया पब्लिशिंग हाउस बाम्बें, 1962

श्रीनिवास, एम0 एन0: *मोविलिटी इन द कास्ट सिस्टम* मिल्टन सिंगर एण्ड बर्नाड एस0 कोन (सम्पादित) स्ट्रक्चर एण्ड चेंज इण्डियन सोसायटी ,एल्डइन प्रेस, शिकागो,1968

सच्चिदानन्द : *हरिजन इलिट* ,थामसन प्रेस , फरीदाबाद 1977

सिंह,आर0जी0 : *भारतीय दलितों की समस्याएँ एवं उनका समाधान* ,मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1986